

मीडिया और विज्ञापन का उपभोक्ता संस्कृति पर प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. छाया कुमारी,
पी-एच.डी. (समाजशास्त्र)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

लेख संक्षेपण

प्रस्तुत शोधपत्र वैश्वीकरण-प्रधान आधुनिक समाज में उपभोग को एक बहुआयामी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में विश्लेषित करता है। उपभोग अब केवल वस्तुओं और सेवाओं की खरीद का आर्थिक कार्य नहीं रह गया है, बल्कि यह व्यक्ति की सामाजिक पहचान, जीवनशैली, वर्ग-स्थिति और सांस्कृतिक प्राथमिकताओं को निर्मित करने का प्रमुख माध्यम बन चुका है। मीडिया और विज्ञापन उपभोक्ता संस्कृति के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं, जहाँ वस्तुओं का मूल्य उनकी उपयोगिता से अधिक उनके प्रतीकात्मक अर्थों द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न अध्ययन यह दर्शाते हैं कि उपभोग सामाजिक विभेदीकरण, सांस्कृतिक पूँजी तथा जीवनशैली आधारित भेदों को पुनरुत्पादित करता है। डिजिटल मीडिया के उदय के साथ उपभोग और अधिक आकांक्षात्मक, व्यक्तिकेंद्रित और दृश्य-प्रधान होता जा रहा है, जो विशेष रूप से युवा उपभोक्ताओं की इच्छाओं, सौंदर्य आदर्शों और पहचान-निर्माण को प्रभावित करता है। लिंग के संदर्भ में विज्ञापन परंपरागत भूमिकाओं को सुदृढ़ करते हुए स्त्री-पुरुष व्यवहारों को रूढ़िबद्ध ढंग से प्रस्तुत करते हैं, यद्यपि कुछ आधुनिक प्रवृत्तियाँ समावेशिता की ओर बढ़ रही हैं तथापि उपभोग को समझने के लिए आलोचनात्मक मीडिया साक्षरता अनिवार्य है, जो उपभोक्ताओं को सामाजिक शक्तियों की पहचान करने, असमानताओं को समझने और अधिक जिम्मेदार एवं सतत उपभोग व्यवहार अपनाने में सक्षम बनाती है।

मुख्य शब्द : उपभोक्ता संस्कृति, प्रतीकात्मक उपभोग, मीडिया और विज्ञापन, सांस्कृतिक पूँजी, डिजिटल मीडिया, सतत उपभोग।

प्रस्तावना

वैश्वीकरण-प्रधान आधुनिक समाज में उपभोग केवल आर्थिक क्रिया न होकर एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया बन चुका है। यह प्रक्रिया न केवल वस्तुओं और सेवाओं की खरीद तक सीमित है, बल्कि व्यक्ति की सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक रुचियों, जीवन-शैली और वर्ग-स्थिति को आकार देने में केंद्रीय भूमिका निभाती है। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति में उपभोग केवल वस्तुओं के स्वामित्व तक सीमित नहीं रह गया है यह व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा, जीवन-स्तर, सांकेतिक अर्थों और सांस्कृतिक पूँजी का प्रमुख संकेतक बन गया है। अब उपभोक्ता इस बात से अधिक पहचाना जाता है कि वह अपने उपभोग व्यवहारों के माध्यम से कैसी पहचान और जीवनशैली रचना चाहता है। इस प्रकार उपभोग आधुनिक समाज की प्रतीकात्मक प्रणाली में गहराई से निहित है। आधुनिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने उपभोग को केवल आर्थिक लेन-देन की क्रिया के रूप में देखने की पारंपरिक समझ को चुनौती

दी है। आज उपभोग एक बहुआयामी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना के रूप में उभर चुका है, जो व्यक्ति की पहचान, सामाजिक प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक प्राथमिकताओं और वर्ग-स्थिति को निर्मित एवं पुनर्संरचित करता है। समकालीन समाज में उपभोग उन प्रतीकात्मक अर्थों (Symbolic meanings) से भी परिपूर्ण होता है, जिनके माध्यम से व्यक्ति स्वयं को प्रस्तुत करता है (Giddens,1991)। इस प्रकार उपभोग अब यह निर्धारित करने का माध्यम बन गया है कि व्यक्ति कैसा दिखना चाहता है, क्या बनना चाहता है, और किस प्रकार की जीवनशैली से स्वयं को जोड़कर देखता है।

मीडिया और विज्ञापन आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। उपभोग का मूल तत्व वस्तुओं की उपयोगिता नहीं, बल्कि उनके सांकेतिक मूल्य (Sign value) हैं, जिन्हें मीडिया और विज्ञापन निरंतर पुनःउत्पादित करते हैं (Baudrillard,1998)। वहीं उपभोग सामाजिक विभेदीकरण और सांस्कृतिक पूँजी की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। उच्च, मध्य और निम्न वर्ग अपनी विशिष्ट उपभोग शैलियों के माध्यम से स्वयं को सामाजिक रूप से वैधता प्रदान करते हैं। इस संदर्भ में मीडिया उपभोग के ऐसे आदर्श प्रस्तुत करता है जो सामाजिक प्रतिस्पर्धा, आकांक्षाओं और आधुनिकता की परिभाषाओं को पुनर्संरचित करते हैं (Bourdieu,1984)।

डिजिटल युग में मीडिया की भूमिका और अधिक विस्तृत हो गई है। एल्गोरिदम-आधारित विज्ञापन व्यक्ति की ऑनलाइन गतिविधियों, रुचियों और व्यवहार के आधार पर व्यक्तिगत उपभोग पैटर्न को लक्षित करते हैं, जिसे "Surveillance capitalism" की अवधारणा के अंतर्गत समझा जा सकता है (Zuboff, 2019)। इस प्रक्रिया में उपभोग व्यक्ति की इच्छाओं, आकांक्षाओं और सामाजिक तुलना की प्रवृत्ति को निरंतर प्रभावित करता है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे इंस्टाग्राम, यूट्यूब और फेसबुक जीवनशैली-आधारित विज्ञापनों, इन्फ्लुएंसर कंटेंट, ब्रांडेड नैरेटिव्स और 'आदर्श जीवन' के दृश्य उत्पादन के माध्यम से नई उपभोक्ता चेतना को जन्म देते हैं (Featherstone, 2007; Keller, 2016)।

विज्ञापन आधुनिक उपभोग को केवल आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि एक निरंतर 'इच्छा-उत्पादन प्रणाली' (Desire & production system) के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ये संदेश प्रायः ऐसी कमी और अपूर्णता की भावना निर्मित करते हैं, जो उपभोग को समाधान के रूप में प्रस्तुत करती है (Williamson,1978)। परिणामस्वरूप समाज में इच्छाओं, अपेक्षाओं और सामाजिक मानकों में तीव्र परिवर्तन होता है, जहाँ व्यक्ति स्वयं का मूल्यांकन मीडिया द्वारा निर्मित आदर्शों के अनुरूप करने लगता है।

इस शोधपत्र में विभिन्न समाजशास्त्रीय सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्यों के आधार पर मीडिया और विज्ञापन के प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि आधुनिक मीडिया किस प्रकार उपभोगवादी जीवनशैली को सामान्यीकृत करता है, सांस्कृतिक आदर्शों का निर्माण करता है, और सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रियाओं को सशक्त करता है। साथ ही शोधपत्र यह भी विश्लेषित करता है कि उपभोग संस्कृति कैसे वैश्विक और स्थानीय स्तर पर नए व्यवहार, आकांक्षाएँ और सांस्कृतिक मानदंड उत्पन्न

करती है। इस प्रकार यह शोधपत्र उपभोग, मीडिया और संस्कृति के अंतर्संबंधों को समझने के लिए एक आलोचनात्मक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रदान करता है।

आधुनिक समाज में उपभोक्ता संस्कृति एक सर्वव्यापी सामाजिक प्रक्रिया बन चुकी है, जहाँ उपभोग केवल वस्तुओं और सेवाओं के उपार्जन तक सीमित नहीं बल्कि पहचान, आकांक्षा, जीवनशैली और वर्ग-स्थिति का निर्माण करने वाला प्रमुख सांस्कृतिक तंत्र है। वैश्वीकरण, डिजिटलीकरण और मीडिया विस्तार के साथ उपभोग का स्वरूप अधिक प्रतीकात्मक, प्रतिस्पर्धात्मक और भावनात्मक रूप ले चुका है। मीडिया और विज्ञापन इन प्रवृत्तियों को आकार देने वाले सक्रिय सामाजिक संस्थान हैं, जो अर्थ और प्रतीकों का निर्माण करते हुए समाज में उपभोग-आधारित मूल्यबोध को व्यापक बनाते हैं। उपभोक्ता संस्कृति को समझने के लिए कई समाजशास्त्रीय सिद्धांत ऐसी वैचारिक संरचना प्रस्तुत करते हैं जो यह स्पष्ट करती है कि उपभोग आधुनिक समाज में कैसे निर्मित, सामान्यीकृत और सामाजिक रूप से वैध किया जाता है। इस संदर्भ में प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद सिद्धांत, सांस्कृतिक पूँजी सिद्धांत, प्रचार प्रभाव सिद्धांत और उपभोक्ता संस्कृति सिद्धांत विशेष रूप से उपयोगी हैं, क्योंकि ये उपभोग की सामाजिक प्रकृति और मीडिया की भूमिका को गहराई से उजागर करते हैं।

1. प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद सिद्धांत (Symbolic Interactionism Theory)

हर्बर्ट जॉर्ज ब्लूमर के प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद सिद्धांत के अनुसार, व्यक्ति सामाजिक जगत को उन अर्थों और प्रतीकों के आधार पर समझता है, जिन्हें वह दूसरों के साथ अंतःक्रिया में निर्मित करता है। मीडिया और विज्ञापन इस अर्थ-निर्माण की प्रक्रिया में एक केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, क्योंकि वे वस्तुओं और सेवाओं को केवल उपयोगिता के रूप में नहीं बल्कि विशेष प्रतीकात्मक अर्थों-जैसे आधुनिकता, सफलता, सौंदर्य, परिष्कार, सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़कर प्रस्तुत करते हैं (Blumer, 1969)। उदाहरण के लिए, सौंदर्य प्रसाधन केवल सौंदर्य परिष्करण वाली वस्तु नहीं, बल्कि "आत्मविश्वास", "आकर्षण" और "स्वतंत्रता" के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। इसी प्रकार एक कार, एक मोबाइल फोन या एक ब्रांडेड वस्त्र उपयोगिता या सुविधा के बजाय सामाजिक स्थिति और पहचान का संकेत बन जाते हैं। इस तरह की प्रतीकात्मक प्रस्तुति उपभोक्ता की आत्म-छवि और सामाजिक पहचान को सीधे तौर पर प्रभावित करती है।

यह सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि उपभोग वस्तुओं के वास्तविक मूल्य से अधिक उनके सांस्कृतिक अर्थों से संचालित होता है। इसलिए, मीडिया की भूमिका एक "सांकेतिक संरचनाकार" (Symbolic architect) के रूप में उभरती है, जो सामाजिक जगत में वस्तुओं के अर्थ और महत्व को निर्धारित करती है।

2. सांस्कृतिक पूँजी सिद्धांत (Cultural Capital Theory)

पियरे बॉर्डियू के सांस्कृतिक पूँजी सिद्धांत के अनुसार, समाज में वर्गीय भेदभाव केवल आर्थिक पूँजी पर आधारित नहीं होता, बल्कि सांस्कृतिक पूँजी-जैसे विशेष वरीयता, शैली, भाषा, व्यवहार, और

जीवनशैली भी सामाजिक स्थिति को निर्धारित करती है। मीडिया और विज्ञापन उपभोग को सांस्कृतिक पूँजी अर्जित करने का साधन बनाते हैं (Bourdieu,1984)।

उदाहरण के लिए, "ऑर्गेनिक", "हैंड-क्राफ्टेड", "सस्टेनेबल", "लगजरी", "इंटरनेशनल" जैसे शब्द परिष्कृत रुचि (Refined taste) की पहचान के रूप में प्रचारित किए जाते हैं। मध्यम वर्ग के उपभोक्ता इन वस्तुओं के उपभोग के माध्यम से उच्च वर्ग की जीवनशैली का अनुकरण करते हैं, जिसे बॉर्डियू "Emulation of higher class aesthetics" कहते हैं। इस प्रक्रिया में मीडिया वर्गीय अंतर को स्वाभाविक और वांछनीय बनाता है, क्योंकि विज्ञापन यह संदेश देते हैं कि "बेहतर" जीवनशैली वह है जो अधिक महंगे, ब्रांडेड और सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट उत्पादों से निर्मित होती है। इस प्रकार उपभोग न केवल व्यक्तिगत चयन बल्कि वर्गीय पहचान और सामाजिक प्रतिष्ठा का संकेतक बन जाता है।

3. प्रचार प्रभाव सिद्धांत (Hypodermic Needle Theory)

आधुनिक मीडिया सिद्धांत इस मॉडल को सरल और सीमित मानते हैं, फिर भी उपभोग पर विज्ञापन के गहरे मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझने में यह सिद्धांत विशेष रूप से सहायक है। यह सिद्धांत मानता है कि मीडिया संदेश सीधे उपभोक्ता के मन में "इंजेक्ट" किए जाते हैं और व्यक्ति उन्हें बिना आलोचनात्मक सोच के स्वीकार कर लेता है। विज्ञापन की भाषा भावनात्मक दबाव और तात्कालिकता पैदा करती है। यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव उपभोक्ता को आवेगपूर्ण उपभोग की ओर प्रेरित कर सकता है। फास्ट फूड विज्ञापन, सौंदर्य प्रसाधन उद्योग, फिटनेस उत्पाद, और विशेष रूप से सोशल मीडिया आधारित विज्ञापन इस प्रभावी मॉडल को गहराई से उपयोग करते हैं। बच्चों और युवाओं में तो इसका प्रभाव और अधिक प्रत्यक्ष देखा जाता है, क्योंकि वे प्रतीकात्मक संदेशों को अधिक तेजी से ग्रहण करते हैं (Lasswell,1927)।

4. उपभोक्ता संस्कृति सिद्धांत (Consumer Culture Theory)

इस सिद्धांत के अनुसार उपभोग मनुष्य के सामाजिक व्यवहार, पहचान-निर्माण, भावनाओं, इच्छाओं और सांस्कृतिक वृत्तांत का एक केंद्रीय हिस्सा है। मीडिया और विज्ञापन इन सांस्कृतिक वृत्तांतों के प्रमुख निर्माता हैं। उपभोक्ता वस्तुओं के माध्यम से स्वयं को व्यक्त करते हैं, अपने सामाजिक समूहों से जुड़ते हैं और सांस्कृतिक रूप से स्वीकृत जीवनशैली को अपनाते हैं। आज के डिजिटल प्लेटफॉर्म-इंस्टाग्राम, यूट्यूब, टिकटॉक इस प्रक्रिया को और अधिक जटिल और व्यापक बनाते हैं। इन्फ्लुएंसर उपभोग को एक सामाजिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जहाँ जीवनशैली स्वयं एक "ब्रांड" बन जाती है। इस प्रकार उपभोग व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों को जोड़ने वाली गहन प्रक्रिया है, और मीडिया इसके लिए अर्थ-निर्माण का मुख्य मंच है (Arnould & Thompson, 2005)।

इन चारों सिद्धांतों का एकीकृत अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उपभोग कोई साधारण आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि एक जटिल समाजशास्त्रीय प्रक्रिया है। मीडिया उपभोग के प्रतीकात्मक, भावनात्मक, वर्गीय और सांस्कृतिक आयामों को निर्मित करता है। विज्ञापन इन अर्थों को पुनर्संरचित करते हुए उपभोक्ता को निरंतर नए आदर्शों, इच्छाओं और जीवनशैलियों की ओर आकृष्ट करते हैं। इस प्रकार आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति अर्थ, पहचान, वर्ग, भावनाओं, मीडिया और बाजार की संयुक्त क्रियाओं का परिणाम है।

आधुनिक वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी अर्थव्यवस्था ने मीडिया और विज्ञापन को केवल सूचना के

साधन तक सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि समाज में उपभोग से संबंधित नई इच्छाओं, आकांक्षाओं और व्यवहार पैटर्न को निर्मित करने वाले प्रमुख सांस्कृतिक संस्थानों के रूप में स्थापित कर दिया है। उपभोक्ता संस्कृति, जिसे माइक फेदरस्टोन (2007) उपभोग आधारित पहचान, जीवनशैली और प्रतीकात्मक अर्थों का समुच्चय बताते हैं। टेलीविजन, सोशल मीडिया, डिजिटल मार्केटिंग, इन्फ्लुएंसर संस्कृति और ब्रांड कम्प्युनिकेशन मिलकर न केवल उपभोग की प्रवृत्तियों को आकार देते हैं, बल्कि सामाजिक मान्यताओं, सौंदर्य आदर्शों, और व्यक्तियों की आत्म-पहचान को भी प्रभावित करते हैं (Baudrillard,1998; Slater,1997)। इस संदर्भ में मीडिया प्रभाव को केवल आर्थिक क्रिया के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना के रूप में समझना आवश्यक है।

मीडिया और विज्ञापन का उपभोक्ता संस्कृति पर प्रभाव

विज्ञापन का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव उपभोक्ताओं की उपभोग की प्रवृत्तियों पर दिखाई देता है। टेलीविजन विज्ञापन, ऑनलाइन विज्ञापन, रील्स, यूट्यूब विज्ञापन और इन्फ्लुएंसर मार्केटिंग उपभोक्ताओं के "ब्रांड अवेयरनेस" और "ब्रांड प्रेफरेंस" को मजबूत करते हैं। उपभोक्ता निर्णय-निर्माण की प्रथम अवस्था ही ब्रांड जागरूकता पर आधारित होती है, जो ब्रांड उपभोक्ता के मानस में मौजूद नहीं होते, उनकी खरीद की संभावना भी अत्यंत कम रहती है (Kotler & Keller, 2016)।

डिजिटल युग में, एल्गोरिदम-आधारित विज्ञापन इस प्रक्रिया को और अधिक सूक्ष्म एवं प्रभावी बनाते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे इंस्टाग्राम, फेसबुक एवं यूट्यूब उपभोक्ताओं के सर्च पैटर्न, इंटरैक्शन और रुचि के आधार पर व्यक्तिगत विज्ञापन प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न शोध से यह स्पष्ट होता है कि ऐसे विज्ञापन उपभोग की तत्परता को तीव्रता से बढ़ाते हैं (De Veirman, Cauberghe & Hudders, 2017)। उदाहरणस्वरूप, युवा उपभोक्ताओं में "फैशन ब्रांड्स", "स्किनकेयर", "फिटनेस उत्पादों" या "लाइफस्टाइल आइटम्स" की खरीदारी के निर्णय प्रायः उन इन्फ्लुएंसर्स द्वारा निर्देशित होते हैं जिन्हें वे नियमित रूप से फॉलो करते हैं।

मीडिया संदेशों की पुनरावृत्ति और दृश्य तकनीक उपभोक्ता मानस पर स्थायी प्रभाव छोड़ती है। अनेक शोध बताते हैं कि उपभोक्ता कई बार आवश्यकता से अधिक इसलिए खरीदते हैं क्योंकि मीडिया ने "आवश्यकता" और "इच्छा" की सीमाओं को धुंधला कर दिया है (Schor,1998)। परिणामस्वरूप, उपभोग एक सांस्कृतिक आदत और कई बार पहचान का रूप धारण कर लेता है।

मीडिया उपभोक्ता संस्कृति को केवल एक आर्थिक गतिविधि के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उसे सामाजिक प्रतिष्ठा, सौन्दर्य, आधुनिकता और सफलता के प्रतीक के रूप में भी स्थापित करता है। विज्ञापन सामाजिक मानदंडों को दृश्य रूप में विशेषकर लिंग, आकर्षण और आदर्श शारीरिक छवि के संदर्भ में निर्मित और पुनर्निर्मित करते हैं (Goffman, 1979)।

टेलीविजन विज्ञापन, मॉडल, सेलिब्रिटी एंडोर्समेंट और सोशल मीडिया सौंदर्य मानकों को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वे सामान्य जनता के लिए "आदर्श" प्रतीत होने लगते हैं। इससे उपभोक्ताओं में "आदर्श

शरीर", "गोरी त्वचा", "युवा दिखने" और "लक्जरी लाइफस्टाइल" की आकांक्षा पैदा होती है। बॉर्डियू इसे "सांस्कृतिक पूंजी" (Cultural capital) के रूप में वर्णित करते हैं, अतः उपभोग की वस्तुएँ समाज में प्रतिष्ठा और सामाजिक पहचान का माध्यम बन जाती हैं (Bourdieu, 1984)।

युवा वर्ग उपभोक्ता संस्कृति के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील माना जाता है। डिजिटल मीडिया और सोशल प्लेटफॉर्म युवाओं की उपभोग रुचियों, फैशन ट्रेंड्स, आत्म-छवि और सामाजिक संबंधों पर गहरा प्रभाव डालते हैं (Nayar, 2014)। युवाओं में यह प्रवृत्ति अत्यधिक प्रचलित है कि वे उन व्यक्तियों को आदर्श मानते हैं जिन्हें वे सोशल मीडिया पर फॉलो करते हैं। इन इन्फ्लुएंसर्स की जीवनशैली, ब्रांड चयन और मूल्य प्रणाली युवा उपभोक्ताओं की प्राथमिकताओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। शोध यह भी इंगित करते हैं कि इन्फ्लुएंसर-संबंधित विज्ञापन परंपरागत टीवी विज्ञापनों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी होते हैं क्योंकि वे "विश्वास" और "सामाजिक समीपता" (Social proximity) पर आधारित होते हैं (Djafarova & Rushworth, 2017)।

सामाजिक वर्ग, लिंग और युवा उपभोक्ता : उपभोग संस्कृति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

उपभोग संस्कृति आधुनिक समाज में केवल आर्थिक क्रिया न होकर एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया बन चुकी है, जो सामाजिक वर्ग, लिंग और युवा पहचान के निर्माण से गहराई से जुड़ी हुई है। बॉर्डियू (1984) के अनुसार समाज आर्थिक पूंजी के साथ-साथ सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक पूंजी के आधार पर भी विभाजित होता है। विज्ञापन सांस्कृतिक पूंजी को पुनर्निर्मित करते हुए यह धारणा बनाते हैं कि कौन-सी वस्तुएँ "प्रतिष्ठा" और "अभिजन संस्कृति" का प्रतीक हैं। लक्जरी कार, हाई-एंड तकनीक और प्रीमियम फैशन को विज्ञापन जिस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, वह सामाजिक वर्गों के मध्य दूरी को और स्पष्ट करता है (Featherstone, 2007; Slater, 1997)। इस तरह उपभोग व्यवहार सामाजिक पहचान और वर्ग-आधारित विभाजन को पुनः स्थापित करता है।

युवा उपभोक्ता उपभोग संस्कृति से सबसे अधिक प्रभावित समूह हैं क्योंकि उनकी पहचान-निर्माण की प्रक्रिया जारी रहती है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे-इंस्टाग्राम, टिकटॉक और यूट्यूब युवा उपभोग आदतों को गहराई से प्रभावित करते हैं (Perloff, 2014)। आदर्शीकृत छवियाँ युवाओं में तुलना, असंतोष और शरीर-संबंधी चिंता को बढ़ाती हैं। साथ ही FOMO (Feeling of missing out) आधारित डिजिटल मार्केटिंग युवाओं को आकस्मिक खरीदारी की ओर आकृष्ट करती है (Przybylski et al., 2013)।

लिंग और उपभोग संबंध आधुनिक विज्ञापन का एक महत्वपूर्ण आयाम हैं। गॉफमैन (1979) के अनुसार विज्ञापन लिंग भूमिकाओं को निर्मित करते हुए स्त्री सौंदर्य और पुरुष शक्ति की पारंपरिक छवियों को पुनरुत्पादित करते हैं। स्त्री उपभोग आज भी सौंदर्य, फैशन और शारीरिक छवि से गहराई से जुड़ा है (Gill, 2007) जबकि पुरुष उपभोग "Hegemonic masculinity" जैसे शक्ति, तकनीक और सफलता से परिभाषित होता है (Connell, 2005)। यद्यपि हाल के वर्षों में कुछ विज्ञापन लिंग समावेशी पहचानों को अपनाने लगे हैं, परंतु यह परिवर्तन अभी भी सीमित और प्रायः रणनीतिक मार्केटिंग तक ही सीमित है (McPhail & McGuire, 2020)।

मीडिया और विज्ञापन आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। उपभोग अब केवल आर्थिक गतिविधि न होकर एक सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जिसमें पहचान, वर्ग, लिंग और सांस्कृतिक पूँजी के गहरे अर्थ निहित हैं। उपभोग की दुनिया में वस्तुओं का मूल्य उनकी प्रतीकात्मक स्थिति से निर्धारित होता है, और विज्ञापन इन प्रतीकों को निरंतर निर्मित एवं पुनरुत्पादित करते हैं (Baudrillard, 1998)। इसी प्रकार सांस्कृतिक पूँजी और रुचियाँ सामाजिक वर्गों के मध्य भेद को और स्पष्ट करती हैं, और मीडिया इन भेदों को जीवनशैली और ब्रांडों के माध्यम से सामान्यीकृत करता है (Bourdieu, 1984)। डिजिटल मीडिया के उदय के साथ उपभोग और भी अधिक व्यक्ति केंद्रित और आकांक्षात्मक होता जा रहा है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म विशेषकर इंस्टाग्राम और यूट्यूब युवा उपभोक्ताओं की इच्छाओं, सौंदर्य आदर्शों और पहचान-निर्माण पर गहरा प्रभाव डालते हैं (Przybylski et al., 2013; Perloff, 2014)।

लिंग के संदर्भ में भी विज्ञापनों का प्रभाव स्पष्ट है। विज्ञापन परंपरागत स्त्री-पुरुष भूमिकाओं को सुदृढ़ करते हैं जहाँ स्त्रियों को सौंदर्य और घरेलू तथा पुरुषों को शक्ति, पुरुषत्व और तकनीकी दक्षता से जोड़ा जाता है। यद्यपि कुछ आधुनिक विज्ञापन समावेशी और प्रगतिशील पहचानों को दर्शाने लगे हैं, फिर भी उपभोग व्यवहार में लिंग आधारित भेद बना रहता है (McPhail & McGuire, 2020)।

इन सभी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों से स्पष्ट है कि उपभोक्ता संस्कृति सामाजिक संरचना, मूल्य प्रणाली और पहचान राजनीति से गहरे रूप से जुड़ी हुई है। उपभोक्ता संस्कृति आर्थिक क्रिया से कहीं अधिक सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम रखती है। उपभोग इच्छाओं, अर्थों, प्रतीकों, और सामाजिक मानदंडों की जटिल संरचना है, जिसे मीडिया लगातार आकार देता है। चूँकि मीडिया और विज्ञापन उपभोक्ता व्यवहार, इच्छाओं और सामाजिक मानदंडों को निर्मित करने लगे हैं, इसलिए उपभोक्ताओं में आलोचनात्मक मीडिया साक्षरता (Critical media literacy) विकसित करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। Kellner और Share (2007) ने मीडिया सामग्री के आलोचनात्मक विश्लेषण को लोकतांत्रिक नागरिकता का आधार माना है। इस प्रकार का चिंतन उपभोक्ताओं को अधिक संतुलित, समझदारीपूर्ण और धारणीय उपभोग व्यवहार अपनाने में सहायता करता है। साथ ही, यह उपभोक्ता संस्कृति के दबाव से उत्पन्न सामाजिक असमानताओं, पर्यावरणीय क्षति और मानसिक तनाव को भी कम करने में सहायक हो सकता है।

अतः उपभोक्ताओं को अपने उपभोग व्यवहार के पीछे कार्यरत सामाजिक शक्तियों, विज्ञापन रणनीतियों और सांस्कृतिक संदेशों को समझने की आवश्यकता है। एक आलोचनात्मक और जागरूक उपभोक्ता दृष्टिकोण न केवल व्यक्तिगत निर्णयों को अधिक संतुलित बनाता है, बल्कि यह उपभोग संस्कृति में मौजूद सामाजिक असमानताओं को समझने और चुनौती देने का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ सूची

1. Appadurai, A. (1996). *Modernity at large: Cultural dimensions of globalization*. University of Minnesota Press.
2. Arnould, E. J., & Thompson, C. J. (2005). Consumer culture theory (CCT): Twenty years of research. *Journal of Consumer Research*, 31(4), 868–882.
3. Baudrillard, J. (1998). *The consumer society: Myths and structures*. Sage.
4. Blumer, H. (1969). *Symbolic interactionism: Perspective and method*. University of California Press.
5. Bourdieu, P. (1984). *Distinction: A social critique of the judgement of taste*. Harvard University Press.
6. Connell, R. W. (2005). *Masculinities* (2nd ed.). University of California Press.
7. De Veirman, M., Cauberghe, V., & Hudders, L. (2017). Marketing through Instagram influencers: The impact of number of followers and product divergence on brand attitude. *International Journal of Advertising*, 36(5), 798–828.
8. Djafarova, E., & Rushworth, C. (2017). Exploring the credibility of online celebrities' Instagram profiles in influencing the purchase decisions of young female users. *Computers in Human Behavior*, 68, 1–7.
9. Fardouly, J., & Vartanian, L. R. (2016). Social media and body image concerns: Current research and future directions. *Current Opinion in Psychology*, 9, 1–5.
10. Featherstone, M. (2007). *Consumer culture and postmodernism*. Sage.
11. Giddens, A. (1991). *Modernity and self-identity: Self and society in the late modern age*. Stanford University Press.
12. Gill, R. (2007). *Gender and the media*. Polity Press.
13. Goffman, E. (1979). *Gender advertisements*. Harper & Row.
14. Holt, D. B. (2002). Why do brands cause trouble? *Journal of Consumer Research*, 29(1), 70–90.
15. Keller, K. L. (2016). Unlocking the power of integrated marketing communications. *Journal of Marketing*, 80(6), 36–55.
16. Kellner, D., & Share, J. (2007). Critical media literacy, democracy, and the reconstruction of education. *Media Literacy: A Reader*, 3–23.
17. Kotler, P., & Keller, K. L. (2016). *Marketing management* (15th ed.). Pearson.
18. Lasswell, H. D. (1927). *Propaganda Technique in the World War*. New York: Alfred A. Knopf.
19. McCracken, G. (1988). *Culture and consumption: New approaches to the symbolic character of consumer goods and activities*. Indiana University Press.
20. McPhail, D., & McGuire, R. (2020). Marketing gender: New trends in inclusive advertising. *Journal of Consumer Culture*, 20(4), 567–584.
21. Nayar, P. (2014). *The digital public sphere: New media and culture*. Sage.
22. Perloff, R. M. (2014). Social media effects on young women's body image concerns: Theoretical perspectives and research directions. *Sex Roles*, 71(11–12), 363–377.
23. Przybylski, A. K., et al. (2013). Motivational, emotional, and behavioral correlates of fear of missing out. *Computers in Human Behavior*, 29(4), 1841–1848.
24. Schor, J. (1998). *The overspent American: Why we want what we don't need*. Harper Perennial.
25. Slater, D. (1997). *Consumer culture and modernity*. Polity Press.
26. Williamson, J. (1978). *Decoding advertisements: Ideology and meaning in advertising*. Marion Boyars.
27. Zuboff, S. (2019). *The age of surveillance capitalism: The fight for a human future at the new frontier of power*. PublicAffairs.